P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-7* (Part-1) October- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

भारतीय चित्रकला में सामाजिक चित्रण

भूरसिंह जाटव
प्राचार्य,
सागर महाविद्यालय,
पावटा, जयपुर,
राजस्थान

सारांश

भारतीय चित्रकला में सामाजिक चित्रण विज्ञान की चिकनी कसौटी पर कस कर नहीं हुआ अपितु भारतीय संस्कृति, समाज के व्यवहार के काल पाषाण पत्थर पर तरासा गया है जिसका क्रमोन्नत बहुआयामी स्वरूप विभिन्न युगों में विकसित हुआ है भारतीय चित्रकला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है जो मानव सम्याना के विकास क्रम से भी जुड़ा हुआ है। वस्तुत भारतीय धर्म संस्कृति की मूर्त अभिव्यक्ति रही है जहाँ व्यक्ति की सोच नहीं वरन भारतीय समाज का सामूहिक अनुभव और चितंन व्यक्त हुआ है पूर्व पाषाण युगीन में मानव प्रकृति पर निर्भर था, पत्थरों से औजार बनाता था, नव पाषाणयुगीन में कलाकृति का चित्रण प्रारम्भिक रूप में काले–भूरे रंग की पाट्री चाक पर विकसित हुई। प्रागैतिहासिक काल के नवप्रस्तर युगीन ने भारत के सैकड़ों स्थानों पर चित्रावशेष छोड़े हैं। पाषाण चित्रों का पता चला है। प्राचीन भारतीय साहित्य में चित्रकला से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होती है इस युग में कला की लोकप्रियता निर्विविवाद थी भारत में बौद्धकालीन महान् विरासत भित्ति चित्रों के रूप में सुरक्षित है। 12वीं शताब्दी से ही राजपूत शैली का विकास हो गया था जिस पर लोक चित्रकला सामाजिक जीवन का प्रभाव स्पष्ट है। मुगल चित्रकला का भारतीय चित्रकार की विभिन्न शैलियों में अत्यनत महत्त्वपूर्ण स्थान है। 19वीं सदी में आधुनिक कला का मार्ग प्रशस्त करने वाले राजा रवि वर्मा सर्वप्रथम भारतीय चित्रकार थे।

20वीं शताब्दी के प्रथम चरण भारतीय चित्रकला का लगभग ह्रास हो चुका था और शासक वर्ग के द्वारा अंग्रेजी संस्कृति तथा कला थोपने के प्रयत्न जारी थे और कला एक कुण्ठित अवस्था का द्योतक मात्र रह गई थी। आधुनिक भारतीय चित्रकला में अमृता शेरगिल एवं मकबूल फिदा हुसैन ने थोड़े समय में ही नये आयाम प्रस्तुत किये ग्रामीण औरतें, नववधु, बच्चे, वृद्ध, ग्रामीण चित्रों के माध्यम से निम्न वर्ग के सामाजिक यथार्थ का चित्रण कर चित्रकला को सही रास्ता दिखाया।

अमूर्त चित्रण करने वाले कलाकारों ने व्यक्ति की मनोभावनाओं को अभिव्यक्ति देकर जीवन की गहरी पर्तों को उजागर किया। शहरी जीवन की घुटन, अन्तर्मन, मार्मिक व्यवस्था को व्यष्टि रूप में अंकित कर उन्होंने भारतीय चित्रकला को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जोड़ दिया है।

मुख्य शब्द : चित्रकला, पाषाणयुगीन, संस्कृति, पॉटरी, आखेट चित्र, शैलियाँ, पटचित्र, आदर्शवाद, नैसर्गिकतावादी शैली, चित्रण।

प्रस्तावना

भारतीय चित्रकला कला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है जो मानव सभ्यता के विकास क्रम से भी जुड़ा हुआ है। वस्तुतः भारतीय कला, भारतीय धर्म और संस्कृति की मूर्त अभिव्यक्ति रही है जहाँ व्यक्ति की सोच नहीं वरन् भारतीय समाज का सामूहिक अनुभव और चिन्तन व्यक्त हुआ है।

पूर्व पाषाणयुगीन संस्कृति लगभग, 5,00,000 वर्ष पुरानी मानी जाती है। इस समय का मानव पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर था तथा वनों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध फलों एवं कन्द मूलों से अपनी उदरपूर्ति करता था व जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करने के लिए अनगढ़ पत्थर के औजार व हथियार काम में लाता था। पाषाण युगीन मानव छायादार वृक्षों के नीचे, झाडियों में, नदियों की कगारों में पर्वतों की कंदराओं में निवास करता था। मध्य पाषाण काल के मानव ने छोटे–छोटे पत्थरों तथा पेबुल से अपने औजार बनाने प्रारम्भ कर दिये थे। संभवतयाः इस समय का मानव अग्नि से भी परिचित हो चुका था। किसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था विकसित कर ली थी।

नव पाषाण युगीन मानव मृतक के शरीर का विसर्जन करने के लिए 'शव–दाह' और 'शव–दफन' दोनों ही पद्धतियों के अनुसार करता था। इसीलिए वह कभी–कभी शव के ऊपर समाधि भी बनाता था। मृतक को प्रस्तर उपकरणों

सहित अनेक भौतिक जीवन की आवश्यकताओं से सम्बन्धित उपादानों के साथ भी दफन किया जाता था। आदि मानव की यह स्थिति मानव के सामाजिक जीवन की ओर संकेत करती है। इस काल के मानव द्वारा घर की दीवारों को मिट्टी व ईंटों से निर्मित करने तथा फर्श पर प्लास्टर करके गेरु पोतने के संकेत भी मिलते हैं। इसी समय से चाक पर निर्मित काले–भूरे रंग की पॉटरी का भी प्रारम्भ माना जाता है। दक्षिण भारत में अनेक स्थलों से पीले–भूरे रंग तथा भूरे या काले रंग की हस्तनिर्मित पॉटरी प्राप्त हुई है।

प्रागैतिहासिक काल के नव प्रस्तर युगीन मानव ने भारत के सैंकड़ों स्थानों पर चित्रावशेष छोड़े हैं। अतः यहाँ पर इस युग की चित्रकला के प्रमुख उदाहरण हमें बेलारी, बइनाड–एडकल, सिहनपुर, बुन्देलखण्ड तथा विंध्याचल, मिर्जापुर, रामगढ़, हरनीहरण, बिल्लासरंगम, बूढ़ारपरगना आदि स्थानों पर प्राप्त होते हैं। प्रगैतिहासिक युग के पाषण चित्रों का पता तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, छोटा नागपुर, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और नर्मदा की उपत्यका आदि स्थानों से भी चला है। मध्य प्रदेश के प्रमुख क्षेत्र पंचमढ़ी स्थान महादेव पर्वत श्रृंखला में अवस्थित है। पंचमढ़ी के आसपास कोई 5 मील के घेरे में 50 करीब दरिया गुफाएँ हैं। इन सभी में महत्त्वपूर्ण प्रागैतिहासिक चित्र उपलब्ध हुए हैं उनका निर्माण काल 9वीं व 10वीं शताब्दी में निर्धारित किया है।

'लश्करिया खोह', 'सोनभद्रा', जम्बूद्वीप, निम्बूभोज, बनियाबेरी, भाडादेव, नाकिया और झलाई आदि स्थानों के अनेक चित्र शिलाश्रय गुफाएँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ पर पशु तथा आखेट चित्रों के अतिरिक्त, सशस्त्र युद्ध दृश्यों, आखेट तथा नृत्यवादन के चित्र दिखाई देते हैं।

1. पहले स्तर के तख्तीनुमा व डमरूनुमा मानवाकृतियों को बनाया गया है। जिनमें शारीरिक गठन से लहरदार रेखाओं से दिखाया है। इनमें लाल (गेरु), पीले रंग की अधिकता है।
2. दूसरे स्तरे में वे चित्र आते हैं, जिनमें आकृतियों का रूप विन्यास बेडौल, ओजपूर्ण एवं असंतुलित है। इनमें केवल उनका अहेरिया (शिकारी) रूप ही अभिव्यंजित है।
3. तीसरे स्तर में आकृतियाँ कुछ स्वाभाविक बन पड़ी है। कुछ अन्य चित्र आम 'घरेलू जीवन' तथा 'सामाजिक जीवन' से सम्बद्ध है। इनमें 'आखेट के लिए प्रस्थान करते' आदि मानव शहद एकत्र करते घुडसवार योद्धा, वाद्य यंत्रों को बजाते वादक, शस्त्रधारी सैनिक इत्यादि को दिखाया है। इन चित्रों के रंग काले, कुछ सफेद हैं जिन्हें बाहर से लाल रंग की रेखा में आकृतिबद्ध किया गया है।

भीमबेटका की गुफाएँ मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में 'भीमबेटका' नामक पहाड़ी पर स्थित है। यहाँ चित्रों के दो स्तर मिलते हैं, जो 8,000 ई.पू. से लेकर 15,000 ई.पू. तक के हैं। पहले स्तर के चित्रों में शिकार नृत्य, हिरण, बारहसिंगा, सुअर, रीछ, जंगली भैसें, घोड़े, हाथी एवं अस्त्रधारी घुड़सवार हैं। दूसरे स्तर पर मानवों को जानवरों के साथ अंतरंग मित्र के रूप में दिखाया है। जब मानव ने खेती व पशुपालक के तीरके समझ लिये थे। यहाँ पर आखेटक, कृषक, ग्वाले आदि चित्रित हैं।

मन्दसौर, होशंगबाद, आदमगढ़ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ सैंकड़ों दरियों में आदि मानव के दैनिक जीवन की कहानी रेखाओं रंगों में चित्रित है। जो उत्तर प्रदेश के प्रमुख क्षेत्र मिर्जापुर, सोरहोघाट, लिखुनियाँ, मानिकपुर आदि स्थानों पर मिले कृषि जीवन के अन्तर्गत पशुपालन बैल गाड़ियाँ, नौका–विहार, मधु संचय आदि रूप चित्रित है। आमोद–प्रमोद संबंधी चित्र उनके सामाजिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय चित्रकला की परम्परा का अलग चरण आद्यैतिहासकाल है। इस काल में सिन्धु नदी की उपत्यका में एक अतिविकसित सभ्यता विद्यमान थी। इस सभयता के विविधपक्षी अवशेष प्रारम्भ में हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ों से मिले थे। अब तक इस सभ्यता के अवशेष रंगपुर, लोथल, अतरंजीखेड़ा तथा आलमगीरपुर आदि अनेक स्थानों से प्राप्त हो चुके हैं। इस सभ्यता में अन्य सामग्री के साथ मिट्टी के बर्तनों के असंख्य टुकड़े भी मिले हैं, जिन पर काले या सफेद रंगों के चित्रांकन पाए गए है। ये बर्तन पूजा–अनुष्ठान में तो काम आते ही थे, नित्य–प्रति के उपायों में भी लाए जाते थे और मृतक के साथ दफनाए भी जाते थे। इससे स्पष्ट होता है कि उस काल के मनुष्य कितने कला प्रेमी थे। कला उनके जन्म–मरण सामाजिक जीवन की संगिनी थी।

प्राचीन भारतीय साहित्य में चित्रकला से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होती है। वैदिक युग से लेकर सातवीं–आठवीं शताब्दी तक जो कुछ भी वाड्.मय है उसमें यत्र–तत्र–सर्वत्र चित्रकला के लिए कितना आदर था और उसे कितनी अधिक महत्ता प्रदान की जाती थी।

इस युग में कला की लोकप्रियता तो निर्विवाद थी। राजवंशों और श्रेष्ठि वर्ग द्वारा भी कलाकारों को पर्याप्त प्रश्रय और संरक्षण प्राप्त होता था। फलतः कला को फलने–फूलने और विकसित होने का अवसर सदैव मिलता रहा। राज्याश्रय की यह परंपरा बाद के युगों में भी चलती रही। इस बात के अतिरिक्त रानियों, दरबारियों और सामन्तों, दास–दासियों में भी चित्रकला के प्रति विशेष आग्रह, मोह और लगाव था। ये राजवंश चित्रकला को मात्र अपनी कला–मर्मज्ञता प्रमाणित करने अथवा अपनी शान बढ़ाने के लिए ही नहीं, वरन् कला को समाज व संस्कृति का विशेष अंग समझकर उसकी रक्षा करने के लिए उसका संवर्द्धन करने के लिए भी उत्सुक और सचेष्ट रहा करते थे।

भारत में बौद्धकालीन महान् विरासत भित्ति चित्रों के रूप में सुरक्षित है। इन भित्ति चित्रों का विस्तार भारत में सर्वत्र मिलता है। इस कलात्मक धरोहर की लोकप्रियता भारत के उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त तथा मध्य एशिया के अनेक देशों तक पहुँची। बौद्ध कला की इस महान् धाती का समृद्ध केन्द्र 'अजन्ता' है जो महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं तथा जातक कथाओं पर आधारित है। इन चित्रावलियों में इस काल की आरम्भिक और अन्तिम दोनों चरणों की कला दिखाई पड़ती है। श्रीलंका में 'सिगिरिया की गुफाओं' में भी इस कला शैली का परिपक्व रूप दिखाई पड़ता है। भारत में 'बाघ, बादामी, सित्तन्नवासल

के चित्रों में अजन्ता के चित्रों की छाप है। इस प्रकार बौद्धकला की सर्वोत्तम चित्राकृतियाँ अजन्ता में देखने को मिलती है, जिनकी विशेषताएँ संसार भर में प्रचलित है। विभिन्न विद्वानों ने अजन्ता की कला का अध्ययन कर उसे विश्व की कलाकृतियों के संदर्भ में देखा है और अनेक निष्कर्ष निकाले हैं। चित्रों का मुख्य विषय 'बुद्ध का वास्तविक जीवन' तथा उनके 'पूर्व जन्म की जातक कथाओं का चित्रण है। 'वाचस्पति गैरोला' ने अजन्ता के चित्रों में बुद्ध के दार्शनिक एवं अध्यात्मिक स्वरूप तथा पद्म पाणी, वज्रपाणी, बोधिसत्व, अवलोकितश्वर आदि के स्वरूपों के साथ बुद्ध के जन्म से मृत्यु तक विविध पहलुओं तथा बुद्ध के सामाजिक जीवन की अलौकिक घटनाएँ प्रमुख हैं, जैसे–विवाह, गृह–त्याग आदि।

ऐतिहासिक दृष्टि से बुद्ध के बाद से चित्रकला की ओर जन समाज की निरन्तर बढ़ती अभिरुचि का पता चलने लगता है। अशोक के पहले ही चित्रकला के अध्ययन–अध्यापन की परम्परा अच्छी तरह आरम्भ हो गयी थी। बाद में तो इसकी शिक्षा पर विशेष बल दिया जाने लगा था। देव शैली और नाग शैली के नामों से इस चित्रकला का वर्गीकरण हुआ। मगध में देव शैली प्रचलित नहीं थी। अशोक के समय में यक्ष शैली का विकास हुआ और बाद में आचार्य नागार्जुन के समय में नाग शैली का प्रचलन हुआ। इन शैलियों का विकास देश के विभिन्न अंचलों मे होता रहे। इसी प्रकार, बौद्ध चित्रकला की ही भांति, जैन चित्रकला की भी अपनी विशिष्ट परंपरा रही है। ताड़पत्रों, वस्त्रों और कागज पर बने ये चित्र अत्यन्त प्राणवन्त, रोचक और कलापूर्ण होते थे। इनका विस्तार भी काफी था।

ताड़पत्र पर अंकित 'कल्पसूत्र' तथा 'कालकाचार्य कथा' के आधार पर निर्मित 'पार्श्वनाथ', नेमिनाथ और ऋषभनाथ तथा अन्य बीस तीर्थंकर महात्माओं के दृष्टान्त चित्र जैन कला के सर्वाधिक प्राचीन उदाहरण है। इस युग के जैन कलाकारों एवं विद्वान मुनियों ने भी स्वर्णमय और रजतमय स्याही से मूल्यवान चित्रों एवं पोथियों का निर्माण किया। जैनियों के पास भी अनेक तांत्रिक देवी–देवताओं के वस्त्रचित्र उपलब्ध है। मुनि कांतिसागर के संग्रह में अनेक व्यक्तिगत संग्रह, लखनऊ, इलाहाबाद तथा कलकत्ता आदि के संग्रहालयों में मूल्यवान वस्त्रचित्रों के नमूने देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार जैन भद्रसूरि के समय का 'जैन शास्त्रों' पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालने वाला एक बहुमूल्य एवं वृहद् पटचित्र जिसको मुगल, राजपूत शैलियों के पूर्व का सर्वोच्च पटचित्र कहा जाता है। 'ब्रिटिश म्यूजियम' में सुरक्षित है। 'नाहटा कला भवन, बीकानेर, में भी इस प्रकार के सुन्दर वस्त्रचित्र मिलते हैं। इस युग में जैन कलाकारों ने जहाँ मार्कण्डेय पुराण तथा 'दुर्गासप्तशती' जैसे वैष्णव सम्प्रदाय सम्बन्धी ग्रन्थों के चित्र निर्मित किये, वहीं 'रति रहस्य' और वात्स्यायन मुनि के 'कामसूत्रों' सम्बन्धी चित्रों का भी निर्माण किया।

इसके बाद प्रायः समस्त उत्तराखण्ड में एक प्रकार की समन्वयात्व शैली का विकास हुआ। 'ललित विस्तार', 'मानसागर', 'अग्नि–पुराण' आदि में इसके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। गुप्त काल तक चित्रकला का पूर्ण विकास हो चुका था। गुप्तकाल ही अन्य कलाओं की भाँति चित्रकला के लिये भी स्वर्ण युग था।

बारहवीं शताब्दी से ही राजपूत शैली का विकास आरम्भ हो गया था। धीरे–धीरे राजपूत चित्रकला का बहुरंगी, बहुविध विकास होता रहा। दिल्ली के सुल्तानों का राजत्वकाल जब समाप्त हुआ और मुगलों का शासन आरम्भ हुआ तो देश की सामाजिक–राजनीतिक स्थिति में कुछ स्थायित्व आया और जैन समाज का जीवन भी कुछ शांत हुआ। इस युग में बंगाल, उड़ीसा, विजयनगर आदि में चित्रकला का जो विकास हुआ उसी क्रम में वीर भूमि राजस्थान में भी चित्रकला का उन्नयन हुआ। राजपूत शैली के अनेक रूप प्रस्फुटित होने लगे। लोकचित्रकला का तो उन रूपों का प्रभाव था ही। ग्वालियरी, अंबर एवं मेवाड़ी, मारवाड़ी, बीकानेरी, शैलियों के अतिरिक्त जयपुरी, किशनगढ़ी आदि शैलियों का भी क्रमिक विकास हुआ। कोटा–बूंदी शैली का भी विकास इसी व्यापक परंपरा के फलस्वरूप हुआ। अठारहवीं शताब्दी तक ये सभी शैलियाँ अपनी चरम अवस्था तक पहुँच चुकी थी। राजस्थान में अनेक सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक केन्द्र और नगर को इन सबकी अपनी पृथक शैलियाँ थी। इन शैलियों को जैन शैली का सहयोग भी मिला। इस प्रकार राजपूत चित्रकला का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्मित हुआ। राजपूत शैली पर लोक चित्रकला, सामाजिक जीवन का प्रभाव स्पष्ट है इस शैली के चित्रकारों, सामान्य जन–जीवन, ग्रामीण सामाजिक जीवन और सरलता दिखायी देती है श्री गैरेला का कथन है, ''मुगल शैली के चित्र राजसी तथा सामंती परम्पराओं से प्रभावित और यथार्थवादी हैं किन्तु राजपूत शैली के चित्र कल्पनाप्रचुर, तत्कालीन जनवादी विचारों से संयुक्त है और उनमें रूमानीपन है।

''मुगल शैली के चित्रों का विषय प्रायः राज उद्यान, राज परिवार, राज दरबार और युद्ध आदि के दृश्यों का चित्रण करना था। किन्तु कल्पना–प्रचुर राजपूत शैली के चित्रों का विषय ग्रामीण–सामाजिक जन–जीवन का चित्रण, काव्यमय प्रेम कथाओं, लोककथाओं और धार्मिक व सामाजिक रीति–रिवाजों से मुख्यता संबंद्ध रहा है।''

मुगल चित्रकला को शासकों ने प्रश्रय दिया और उसके विकास में उनहोंने पूरी रुचि दिखायी। यह उनकी सहज उदारता और कला प्रेम का ही परिचायक था। मुगल चित्रकला का भारतीय चित्रकला की विभिन्न शैलियों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

श्री गैरोला का कथन है, ''भारतीय लोक–जीवन में प्राचीन काल से ही धरती के प्रति अथाह पूजा–भाव रहा है। धरती के प्रति लोक–जीवन की इस उत्कट आस्था को श्रुतियों ने उनके तरह से बताया हैं कि हमारी लोक रुचियों को जीवित रखने के लिए भारत के विभिन्न प्रदेशों में लोक कला ने जो कार्य किया, विज्ञान और दर्शन की दृष्टि से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। हमारे अज्ञानतनामा लोक–कलाकारों ने जिनमें नारियों की मुख्यता रही है। धरती के प्रति अपनी पवित्र निष्ठा को अपने हृदय की अजस्त्र रस–धारा द्वारा अभिरूचित करके कुछ ऐसी सहज, सुन्दर कलाकृतियाँ हमें दी, जो हमारे

राष्ट्र और समाज की सम्पूर्ण चेतना को आह्लादित करती हैं।

भारतीय कला में किसी भी युग एवं स्थान पर कोई भी शैली एवं प्रविधि का अभ्युदय एवं विकास किया हो, पर, उसने संस्कृति के इन मूल तत्वों की अवहेलना नहीं की। पश्चिमी कला आन्दोलनों में यथार्थवाद आधुनिकता का आरम्भ माना जाता है। आधुनिककला के इसी आग्रह के तहत् रूप को नवीन परिवेशों में देखने की यह चेष्टा विश्व स्तर पर कला के क्षेत्र में मूल आवश्यकता के रूप में महसूस की जाने लगी। क्योंकि यह ऐसा अवसर था जिसमें कला का मूल ध्येय 'कला के लिए कला' बना; जबकि इसके पूर्व की कला धर्म एवं समाज की अभिव्यक्ति मात्र थी। भारतीय कला में अतिकल्पना (फैन्टेसी) पौराणिकता, प्रतीकात्मक एवं आदर्शवाद का समावेश कला के मूलाधार रहे हैं।

भारत में समय–समय पर अनेक आक्रमण हुए और विदेशियों ने अपने साथ अपने धर्म कला और संस्कृति का भी यहाँ प्रसार किया जिसका प्रभाव हमारी कला व संस्कृति पर दृष्टव्य है। हूणों से अंग्रेजों तक के आक्रमण और उनसे पड़े प्रभाव को हमारी संस्कृति बोलती है। अजन्ता, जैन व राजपूत शैलियों में दृष्टिगोचर भारतीय चित्रकला के मौलिक रूप में मुगल काल से विदेशी तत्वों का प्रवेश आरम्भ हुआ कुछ समय तक मुगल शैली के अन्तर्गत पर्शियन व राजपूत शैलियों के समन्वित रूप से विकसित होने के बाद उसके पतन के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगे। धीरे–धीरे ऐसे प्रभावों के परिणामस्वरूप यूरोपीय कला के नैसर्गिकतावादी रूप का भारतीय कला पर प्रभाव पड़ने लगा। एक तरह से विदेशी प्रभाव हमारी नियति रही है। हमें जो सिखाया जाता वही हम सीखते जिस संस्कृति ने हमसे जो कुछ चाहा प्राप्त किया और जो कुछ सीखना चाहा हमें सीखाया हम उसे ग्रहण करते गये और कलाविद् इसे हमारी आत्मसात् करने की प्रवृतियाँ समन्वयात्मक प्रवृत्ति का बाना पहनाते रहे समय के साथ–साथ इसी प्रवृत्ति ने हमें हमारे सांस्कृतिक परिवेश से दूर किया और अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति की ओर उन्मुख किया। अध्ययन से मैंने जाना कि 18वीं शताब्दी के मध्य से भारत में ब्रिटिश युगीन कला का प्रभाव रहा। अंग्रेज कुशल भारतीय चित्रकारों से पाश्चात्यवादी शैली के व्यक्ति चित्र निजी परिवार के सामूहिक व्यक्ति चित्र व स्थानीय सामाजिक चित्र बनवाते जिससे उनकी कला पर अंग्रेजी कला विद्यालयी शैली के तत्वों का प्रभुत्व बढ़ता गया। 1835 में मैकाले ने भारतीय लोगों को आंग्ल शिक्षा प्रणाली के अनुसार प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों को घोषित किया और मद्रास, कलकत्ता, बम्बई तथा लाहौर में उन्होंने कला विद्यालय खोले जिसका भारतीय शिक्षा व सामाजिक विचारधारा पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा और भारतीय लोककला संस्कृति तथा सामाजिक व वैयक्तिक आचरण में ब्रिटिशों का अन्धानुकरण करने लगे।

मुगल शैली के कुछ चित्रकारों ने पटना व बंगाल में रहकर एक विशिष्ट शैली को जन्म दिया जो 'पटना' या 'कम्पनी शैली' के नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु पटना शैली के चित्रों में रेखांकन की कठोरता और भावना की कमी थी परन्तु आकृति की सीमा रेखाएँ बहुत संतोषजनक बनायी गई। ऐसी ही विदेशी व क्षेत्रीय चित्रकला शैलियों के मिश्रण से 'तैमूरिया शैली, तन्जौर शैली, मैसूर शैली आदि प्रकाश में आयी किन्तु कोई भी स्थायी व प्रसिद्ध न हो सकी।

19वीं शताब्दी में खोले गए कई कला विद्यालयों में ग्रीक मूर्तियाँ व बाद में व्यक्तियों को सामने बैठाकर हूबहु चित्रण करने का अभ्यास कराया जाता था जो भारतीय पद्धति के बिल्कुल विपरीत था जिससे कला विद्यार्थी बहुत असमंजस्य की स्थिति में रहते थे इसीलिए वे अंग्रेजी कला प्रणाली में पूर्ण पारंगत हीं हो सके और न ही भारतीय कला प्रकृति को ही सीख पाये। ऐसे वातावरण में त्रावणकोर के प्रतिभा सम्पन्न चित्रकला 'राजा रवि वर्मा' ने थियोडोर जेन्सन नाम के अंग्रेज चित्रकाल से तैल रंग चित्रण पद्धति की शिक्षा प्राप्त करके भारतीय सामाजिक जनजीवन से सम्बन्धित व पौराणिक विषयों के चित्र बनाये। ये चित्र नैसर्गिकतावादी शैली की दुष्टि से उत्कृष्ट हैं। आधुनिक कला का मार्ग प्रशस्त करने वाले राजा रवि वर्मा सर्वप्रथम भारतीय चित्रकार थे।

20वीं शताब्दी के प्रथम चरण में भारतीय चित्रकला का लगभग ह्रास हो चुका था और शासकवर्ग के द्वारा अंग्रेजी संस्कृति तथा कला थोपने के प्रयत्न जारी थे और कला एक कुण्ठित अवस्था की द्योतक मात्र ही रह गयी थी। यह स्तब्धता की स्थिति राजनीति, समाज, शिक्षा, कला तथा मनुष्य के विश्वास पर भी थी। यदि संस्कृति का समन्वय सम्भव नहीं होता तो विद्रोह निश्चित होता है भारतीय कला में इस भावना मे नवजागरण का रूप ग्रहण किया और पुनः 'कला विकास' की नवीन आशाओं का सूत्रपात हुआ।

भारतीय कला और संस्कृति के जागरण की ओर जब भारतीय जनता का ध्यान पुनः आकर्षित हो रहा था उसी समय कलकत्ता महाविद्यालय के प्रिंसिपल के रूप में ई.बी. हावेल आये जिनके सहयोग से बंगाल में एक नवील कला आन्दोलन का उद्भव हुआ और इस कार्य में उनका दिया अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने आधुनिक कला की कहानी का यह सूत्रपात बंगाल स्कूल के नाम से किया है। जिसके उल्लेखनीय चित्रकारों में नन्दलाल बोस, असित कुमार हाल्दार, अमृत शेरगिल, गगेन्द्रनाथ ठाकुर, यामिनी राय, देवी प्रसाद रॉय चौधरी, शैलेन्द्रनाथ डे, शारदा चरण उकील, मुकुल चन्द्र डे जैसे कलाकारों के नूतन प्रयोगों ने भारतीय चित्र परम्परा को स्वतन्त्र अंकन की ओर प्रेरित किया।

इन कलाकारों ने समाज के साधारण व्यक्तियों, गम्रीण जन–जीवन, समाज का दुःख–दर्द, त्रासदी, करूणा, भय, ग्रामीण व्यक्तियों, महिलाओं का सरल व बखूबी चित्रण कर सामाजिक यथार्थ को आधुनिक रूप प्रदान किया।

भारतीय व जापानी शैलियों से सम्मिश्रित शैली विकसित हुई जो बंगाल शैली या पुनरुत्थान शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस आन्दोलन का प्रभाव प्रायः भारत के समस्त तत्कालीन चित्रकारों पर पड़ा और विरोधों के बावजूद भारत के सभी हिस्सों में यूरोपीय चित्रकला की शैली में भारतीय सामाजिक विषयों को दर्शित करने की

प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती गई। चालीस के दशक में बंगाल के दुर्भिक्ष और द्वितीय विश्वयुद्ध के वातारण में कलकत्ता के कुछ युवा चित्रकारों ने जिन्दगी की तीखी और कड़ी सच्चाईयों से जुड़ने के लिए कल्पना शक्ति का अपने चित्रांकन में संयोजित किया और कलाकार को एक नयी भूमिका मिली।

कुछ ऐसे चित्रकारों का उल्लेख भी यहाँ महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने 'बंगाल स्कूल की' परम्परा को अपनाने की अपेक्षा अपनी नयी अनुभूतियों की परम्परा पाश्चात्यमान मूल्यों पर आधारित है और उसकी अपेक्षा अपने देश की संस्कृति एवं अपने शास्त्रीय संविधानों में रसानुभूति के ऐसे तत्व विद्यमान है जिनको ग्रहण कर अपनी ही रुचियों के अनुसार अपनी कला का आधुनिकतम विकास संभव हो सकता है। इस प्रकार के चित्रकारों में यामिनी राय और अमृता शेरागिल, शैलोज मुखर्जी अग्रणी रहे हैं।

भारत के स्वाधीन होने के पूर्व ही यद्यपि चित्रकला के क्षेत्र में स्वतन्त्र चिन्तन का नवोन्मेष और राष्ट्रीय चेतना का उदय हो चुका था, फिर भी उसका पूर्ण प्रभावशाली रूप, स्वाधीनता के बाद रची गयी कलाकृतियों में स्पष्ट हुआ। 1940 ई. तक भारत में नवीन विचारधारा स्वच्छन्द रूप में प्रवाहित होने लगी और अनेक चित्रकारों ने पाश्चात्य देशों की नवीन प्रवृत्तियों को लेकर यथार्थवादी, स्वप्निल शैली तथा प्रगतिवादी प्रवृत्ति को अपनी कृतियों में दर्शाया हे। राष्ट्रीय आन्दोलनों व आजादी के उपरान्त विकास के साधनों के फलस्वरूप पाश्चात्य आधुनिक कला आन्दोलनों के एक तेज तूफान ने भारत की कला को झिंझोड़ के रख दिया और भारतीय कलाकारों ने इस सहज होकर अपनाया। भारतीय, रचनावाद, अभिव्यजनावाद, सूक्ष्मवाद, अतियथार्थवाद, अमूर्तवाद जैसे कला आन्दोलनों का स्पष्टतः प्रभाव दिखने लगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के करीब आधुनिक कला की दिशा में प्रगति करने के विचार से भारत के बड़े शहरों में नव कलाकार प्रयत्नशील हुए बम्बई में रजा आरा, सूजा, हुसैन जैसे कलाकारों ने सम्मिलित होकर प्रगतिशील कलाकारों के मंडल की स्थापना की, कलकत्ता में गोपाल घोष, पारितोष सेन जैसे कलाकारों के प्रयत्नों को अपनाने का निश्चय करके एक कलाकार संघ बनाया जिसमें बाद में रामकिंकर, अवनिसेन, सुनील माधव सेन आदि शामिल हएु। सभी कलाकारों का विश्वास था कि परम्परा से एक निष्ठ रहने में कूपमंडूक प्रवृत्ति है। जिससे कला का विकास नहीं हो पाता कला का राष्ट्रीय बन्धनों को तोड़कर विश्वव्यापी रूप दिया जाना चाहिये। उन्होंने आम लोगों को अपनी कला का विषय बनाया और उनके रूपाकार प्रमुखता देशज लोक कला तथा धनवादी तत्वों के संश्लेषण गहराई निहित है। उनके काम में सामाजिक एकता तथा प्रचुर ऊर्जा प्रकट होती दिखती है। जिससे युवा पीढ़ी पर पुरोगामी प्रभाव पड़ा। राजा व धर्म का प्रभुत्व समाप्त होकर पीड़ित जनता की स्वाधीनता व अभ्युत्थान की आकांक्षाएँ पनपने लगी व यथार्थवादी कलाकारों ने सहानुभूतिपूर्वक उनकी व्यथाओं व आकांक्षाओं को चित्रित किया। पिकासो ने 'गवेर्निका' को चित्रित करने के पश्चात् स्पष्ट किया था कि समाज के प्रति निष्कर्त्तव्य होना कलाकार के लिये सम्भव नहीं है। पिकासो के प्रसिद्ध चित्रों में भिखारी, रास्तों के गायक, परिश्रमी व पीड़ित लोग, परित्यक्ता युग्म, इस्त्री करने वाली आदि चित्रों में तथा गुलाबी काल के चित्रों में मानवीय दुःख, निराशा समर्पण आदि का चित्रण कर पिकासो ने सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार वानगो, गाँग्व तुलजलोत्र के आदि पाश्चात्य कलाकारों ने समाज के विभिन्न पक्षों का चित्रण कर अपना योगदान दिया।

आधुनिक भारतीय चित्रकला में अमृता शेरगिल ने थोड़े समय में ही नवीन आयाम प्रस्तुत किये ग्रामीण औरतें, नववधू, बच्वें, वृद्ध, ग्रामीण चित्रों के माध्यम से निम्न वर्ग के सामाजिक यथार्थ का चित्रण कर चित्रकला को सही रास्ता दिखाया। मकबूल फिदा हुसैन गरीबी झेलते हुए चित्रकला क्षेत्र में आए, इसलिए साधारण जन की पीड़ा, सत्रांस और उल्लास को उन्होंने अपनी शैली में अंकित किया शैलोज मुखर्जी का कुएँ पर पानी भरती औरतें, गृहकार्य करती औरतें, पायल बंधन आदि चित्रों में भारतीय जन–जीवन सहज, सरल और मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। रसिक रावल, अब्दुल रहीम, अप्पा भाई आलमेलकर, गोवर्धन लाल जोशी, भूरसिंह शेखावत, रामगोपाल विजयवर्गीय, पी.एन. गोयल ....इत्यादि चित्रकारों ने अपनी महत्ती भूमिका निभाई।

उद्देश्य

1. भारतीय चित्रकला की महत्ता को प्रदर्शित करना।
2. चित्रकला में क्रमशः आये वैचारिकी दर्शन चिन्तन को बताना।
3. चित्रकला के माध्यम से सामाजिक यथार्थ की आधुनिक रूप में प्रस्तुत करना।
4. सामाजिक समस्याओं के विषयों को चित्रकला के माध्यम से प्रदर्शित करना।
5. चित्रकला की उपादेयता को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्व को प्रदर्शित करना।

निष्कर्ष

अमूर्त चित्रण करने वाले कलाकारों में व्यक्ति की मनोभावनाओं को अभिव्यक्ति देकर जीवन की गहरी पर्तों को उजागर किया। शहरी जीवन की घुटन, संत्रास, दुःख–दर्द, भागमभाग, अन्तर्मन मार्मिक व्यथा को व्यष्टि रूप में अंकित कर उन्होंने भारतीय चित्रकला को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जोड़ दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मीनाक्षी कासलीवाल (2011): 'भारती–भारतीय मूर्ति शिल्प एवं स्थापत्य कला', जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ.सं. 13.*
2. *डॉ. रीता प्रताप (2009): 'भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास', जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ.सं. 18–19.*
3. *ए.एल. श्रीवास्तव (1998): ''भारतीय कला'', इलाहाबाद, किताब महल पब्लिशर्स, पृ.सं. 169.*
4. *वाचस्पति गैरोला (1990): ''भारतीय चित्रकला'', दिल्ली, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृ.सं. 13.*

5. डॉ. रीता प्रताप (2009): ''भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास'', जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ.सं. 64.
6. वाचस्पति गैरोला (1990): ''भारतीय चित्रकला'', दिल्ली, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृ.सं. 13.
7. डॉ. रीता प्रताप (2009): ''भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास'', जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ.सं. 114.
8. वाचस्पति गैरोला (1990): ''भारतीय चित्रकला'', दिल्ली, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृ.सं. 14–15.
9. ऊषा गोयल (1990): ''संस्कृति समाज और साहित्य'', जयपुर एवं नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशन्स, पृ. सं. 58.
10. रवि शंकर साखलकर (2010): ''आधनिक चित्रकला का इतिहास, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. सं. 313.
11. ममता चतुर्वेदी (2010) ''समकालीन कला'', जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. सं. 1.
12. प्रमिला सिंह (2001): ''शैलेन्द्र नाथ डे की कालकृतियाँ'', आगरा, बी.एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, पृ. सं. 13.
13. डॉ. रीता प्रता (2009): ''भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास'', जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ.सं. 316.
14. ममता चतुर्वेदी (2010) ''समकालीन कला'', जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. सं. 76–77.
15. महेन्द्र वर्मा (2006): ''भारतीय चित्रकला की परम्परा'', दिल्ली, भारतीय कला प्रकाशन, पृ.सं. 113.
16. वाचस्पति गैरोला (1990): ''भारतीय चित्रकला'', दिल्ली, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृ.सं. 262.
17. प्रमिला सिंह (2001): ''शैलेन्द्र नाथ डे की कालकृतियाँ'', आगरा, बी.एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, पृ. सं 30–31.